2

ज्ञान की प्रकृति एवं स्त्रोत, ज्ञान के वैधता

(Nature and Sources, Validity of Knowledge)

ज्ञान की प्रकृति

तार्किक ज्ञान प्रतिज्ञप्ति की सत्यता पर आधारित है। यहाँ पर यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्रतिज्ञप्ति की सत्यता के लिए बोध किस प्रकार होता है? ज्ञान स्त्रोत कितने होते हैं? सामान्यत: ज्ञान के चार प्रमुख स्त्रोत माने जाते हैं–

(1) अनुभवजन्य, इन्द्रियों से–प्रत्यक्षीकरण (Perception)

(2) तार्किक चिन्तन (Logical thinking)

(3) निर्णयों एवं स्वामित्व से (Judgement) तथा

(4) अन्तर्दृष्टि अथवा अन्त:प्रज्ञा (Intution)

इनका विस्तृत विवरण यहाँ दिया गया है–

1. अनुभव जन्य, इन्द्रियों से-प्रत्यक्षीकरण (Perception)—इन्द्रियों द्वारा जो अनुभव या प्रत्यक्षीकरण होता है वह ज्ञान का एक प्रमुख साधन है। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा। इनके द्वारा क्रमश: देखकर, सुनकर, सूंघकर, स्वाद लेकर तथा स्पर्श कर हम सांसारिक वस्तुओं के बारे में तरह-तरह के ज्ञान प्राप्त करते हैं। ऐसे ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो अनुभव प्राप्त होते हैं उनकी प्रामाणिकता भी आवश्यक होती है, क्योंकि अनुभवों में कभी-कभी भ्रम भी हो जाता है।

इन्द्रियानुभव के द्वारा ज्ञान के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक ऐसे ज्ञान में कोरे इन्द्रियानुभव के अलावा निर्णय की एक क्रिया निहित होती है और इस ज्ञान में जो भूल होती है वह इस निर्णय की भूल के चलते ही होती है। कोरा इन्द्रिय-प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, बल्कि उसी आधार पर जब हम कुछ निर्णय करते हैं, जैसे, यह कुर्सी है, इसमें चार पैर हैं, आदि, तो ज्ञान इन निर्णयों के द्वारा ही निर्मित होता है।

इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसकी विश्वसनीयता का आकलन किया जा सकता है, परन्तु उस ज्ञान की वैधता ज्ञात करना कठिन होता है। इसका अर्थ होता है कि ज्ञान की सत्यता की पुष्टि करना कठिन होता है।

2. तार्किक चिन्तन (Logical Thinking)—तार्किक चिन्तन मनुष्य के अन्दर एक ऐसी योग्यता है जिसके बिना कोई भी ज्ञान सम्भव नहीं है। अनुभव द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसमें वस्तुओं की उपस्थिति आवश्यक होती है, परन्तु जो ज्ञान अमूर्त है अथवा अवधारणाओं तथा प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित है ऐसे ज्ञान का आधार तार्किक चिन्तन होता है। इन्द्रिय अनुभव के द्वारा रंग, स्वाद तथा गन्ध आदि से सम्बन्धित कुछ संवदेनाएँ प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु जब वस्तुओं में भेद करने का प्रश्न आता है वहाँ हमें तर्क चिन्तन की आवश्यकता होती है। इसमें अमूर्त चिन्तन की प्रक्रिया निहित होती है। इस अर्थ में ज्ञान का आधार तर्क-बुद्धि है।

तर्कानुमान को प्राय: दो तरह का माना गया है—निगमनात्मक (Deductive) आगमनात्मक (Inductive)। निगमनात्मक तर्कानुमान का लक्षण यह है कि यदि वह वैध होगा तो उसके आधार-वाक्यों से निष्कर्ष अनिवार्यत: निकलेगा। दूसरे शब्दों में, निगमनात्मक तर्कानुमान में यदि आधार-वाक्य सत्य हो तो निष्कर्ष भी अनिवार्यत: सत्य होगा। यहाँ आधार-वाक्य तथा निष्कर्ष की सत्यता-असत्यता से तात्पर्य उनकी वास्तविक सत्यता-असत्यता से नहीं है। अत: जब हम कहते हैं कि आधार-वाक्यों के सत्य होने से निष्कर्ष अनिवार्यत: सत्य होगा तो इसका तात्पर्य सिर्फ इतना है कि यदि आधार वाक्य सत्य हो अर्थात् यदि उन्हें सत्य मान लिया जाए तो निष्कर्ष की भी सत्यता अनिवार्यत: स्वीकार करनी होगी। निगमनात्मक तर्कानुमान का सम्बन्ध वैधता-अवैधता से होता है, सत्यता-असत्यता से नहीं। सत्य-असत्य प्रतिज्ञप्तियाँ होती हैं, निगमनात्मक तर्कानुमान तो केवल वैध या अवैध होता है। यही कारण है कि वैसा निगमनात्मक तर्कानुमान भी वैध हो सकता है। जिसके आधार-वाक्य तथा निष्कर्ष सभी वास्तविक दृष्टि से असत्य हों और वैसा निगमनात्मक तर्कानुमान अवैध हो सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि तर्क बुद्धि के दो रूप है—

1. निगमन तर्क-बुद्धि—इस प्रकार के तार्किक चिन्तन में अनेक नियमों तथा सामान्यीकरण का उपयोग किया जाता है। आदर्शवाद में इस तार्किक चिन्तन का विशेष उपयोग किया जाता है। इस चिन्तन के अन्तर्गत हम किसी नियम या सामान्यीकरण से विशिष्ट की ओर बढ़ते हैं। इसमें प्रतिज्ञप्तियों की विशेष भूमिका रहती है।

ज्ञान-प्रत्यय, प्रकार, स्त्रोत तथा प्राप्त करने के साधन

जैसे—सामान्यीकरण → विशिष्टीकरण

सभी मनुष्य मरणशील है—(सामान्यीकरण या नियम)

मोहन एक व्यक्ति है।

∴ मोहन मरणशील है—(विशिष्टीकरण)

2. आगमन तर्क-बुद्धि—इसके अन्तर्गत सत्य की सम्भावना रहती है। इसका प्रयोग प्रकृतिवाद के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार का चिन्तन विशिष्ट से आरम्भ होकर सामान्यीकरण की ओर बढ़ता है और सत्यता की पुष्टि प्रमाणों के आधार पर की जाती है। इसमें परिकल्पनाओं की विशेषत: भूमिका होती है।

जैसे—विशिष्टीकरण → सामान्यीकरण

मोहन एक व्यक्ति है (विशिष्टीकरण)

मोहन मरणशील है

∴ सभी मनुष्य मरणशील हैं (सामान्यीकरण या नियम)

3. निर्णयों एवं स्वामित्व (Judgement and Mastery)—महापुरुषों के द्वारा जो कथन दिये जाते हैं वही ज्ञान का स्त्रोत होते हैं। कथनों तथा परिभाषाओं को ज्ञान के स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त करते हैं, परन्तु ऐसे ज्ञान की सत्यता की परख करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त जो निर्णय लिये जाते हैं वह भी ज्ञान का स्त्रोत होते हैं। इस तरह के ज्ञान के लिए निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी होती हैं—

(1) व्यक्ति को उस ज्ञान अथवा विषय का स्वामित्व होना चाहिए।

(2) व्यक्ति को वास्तव में स्वामित्व की सक्षमता होनी चाहिए।

(3) कथनों की जीवन में व्यावहारिकता तथा सत्यता होनी चाहिए।

(4) ऐसे कथन प्राकृतिक तथ्यों के विपरीत नहीं होने चाहिए।

(5) व्यक्ति की अपेक्षा उसके कथन की सत्यता का आकलन करना महत्त्वपूर्ण होता है।

(6) यदि अन्य महापुरुषों ने कथन का खण्डन किया है तो उसको ज्ञान का स्त्रोत नहीं मानना चाहिए।

(7) उस व्यक्ति के कथनों में विरोधाभास नहीं होना चाहिए। यदि विरोधाभास है तो उस कथन को ज्ञ का स्त्रोत नहीं माना जाना चाहिए।

4. अन्तर्दृष्टि अथवा अन्त:प्रज्ञा (Intution)—अन्तर्दृष्टि शब्द से ही प्रतीत होता है कि यह कि आन्तरिक बोध है, जिसमें ज्ञान के रूप मे भी कुछ स्पष्ट होता है अथवा विदित होता है। इसके अन्त ज्ञानेन्द्रियों तथा तर्कचिन्तन की कोई भूमिका नहीं होती, इसके अन्तर्गत अचानक एक प्रकाशकी ज्योति से मा पड़ती है, जिससे हमें बहुत कुछ बोध होता है। इस प्रकाश को ज्ञान की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार हम कह सकते कि अन्तर्दृष्टि या अन्त:प्रज्ञा हमारे अन्दर एक निहित सहज क्षमता है जो कभी अचानक रूप में क्रियाशील होक हमें आलौकित करती है।

अन्त:प्रज्ञा के साथ आत्मनिष्ठता का ऐसा पुट सम्बद्ध है कि यदि इसे यथार्थ ज्ञान का साधन मान भी लि जाए तो फिर ज्ञान में वस्तुनिष्ठता तथा सार्वजनिकता जैसी कोई चीज नहीं रह जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति अप अन्त:प्रज्ञा के आधार पर किसी भी प्रतिज्ञप्ति 'p' की सत्यता का दावा करेगा और यह निर्धारित करना कठिन हो जायेगा कि कौन प्रतिज्ञप्ति सत्य है और कौन असत्य हैं?

ज्ञान के स्त्रोत
(Sources of Knowledge)

सामान्यत: ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञान प्राप्त करने का मुख्य स्त्रोत माना जाता है परन्तु भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने ज्ञान प्राप्ति के भिन्न-भिन्न स्त्रोत माने हैं। यहाँ कुछ दार्शनिकों द्वारा माने गए स्त्रोतों का वर्णन प्रस्तुत है। शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के निम्नलिखित चार स्त्रोत माने हैं—

1. प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष से शंकर का तात्पर्य इन्द्रिय प्रत्यक्ष से नहीं अपितु आत्म प्रत्यक्ष से है, अन्त:प्रज्ञा (Intution) से हैं।

2. अनुमान—अनुमान से शंकर का तात्पर्य पूर्व अनुभवों के आधार पर तर्क द्वारा तथ्यों को ग्रहण करने से है।

3. **शब्द**—शब्द से शंकर का तात्पर्य आगम (वेद) और निगम (तन्त्र) ग्रंथों से है।

4. तर्क—तर्क को ये ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम स्त्रोत मानते थे। ये इन्द्रियों, अनुमान और शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान को भी तर्क कसौटी पर सत्य प्रमाणित होने के बाद ही स्वीकार करते थे।

पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिक **प्लेटो** ने ज्ञान प्राप्ति का मुख्य स्त्रोत **विवेक** (Wisdom) को माना है, तर्कले ने आत्मा (मन, Mind) को माना है ओर काण्ट ने तर्कनाबुद्धि (Intellect) को माना है। काण्ट ने तो ज्ञान और ज्ञान प्राप्ति के साधनों की विषद् व्याख्या की है।

काण्ट के समय दो विचार धाराएँ समान्तर रूप से चल रही थीं— बुद्धिवाद (Rationalism) और अनुभववाद (Emperialism)। बुद्धिवादी यह मानते हैं कि मनुष्य की बुद्धि को जन्म से ही कुछ सत्यों की जानकारी होती है उन्हें ये प्रागनुभविक सम्प्रत्यय (A Priori Concepts) कहते हैं। इनके विपरीत अनुभववादी इन जन्मजात मौलिक सम्प्रत्ययों में विश्वास नहीं करते। इनके मतानुसार सभी मानसिक सम्प्रत्यय इन्द्रियानुभव द्वारा प्राप्त होते हैं और ये ही मनुष्य के ज्ञान के आधार होते हैं।

काण्ट के अनुसार ज्ञान का आधार (स्त्रोत) न तो केवल बुद्धि है और न केवल इन्द्रियानुभव। इनके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रिय संवेदन और बुद्धि विकल्प, इन दोनों के द्वारा होती है। प्रामाण्य के विषय में काण्ट का विचार है कि भौतिक (व्यावहारिक) ज्ञान के विषय में काण्ट का मत है कि यह हमें मस्तिष्क के द्वारा प्राप्त होता है। काण्ट ने मानव मस्तिष्क की चार शक्तियों (Faculties) का उल्लेख किया है। प्रथम संवेदनशीलता (Sensibility), इसके द्वारा मनुष्य बाह्य संवेदनाओं को ग्रहण करते हैं। दूसरी बाधा इसके द्वारा

मनुष्य बुद्धि विकल्पों द्वारा बाह्य संवेदनाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हैं। तीसरी भावना (Feeling) इसके द्वारा मनुष्य सुख-दु:ख एवं इच्छाओं का बोध करते हैं और चौथी संकल्प शक्ति (Will), इसके द्वारा मनुष्य नैतिक-अनैतिक का बोध करते हैं उसके आधार पर आचरण करते हैं। काण्ट के अनुसार बुद्धि विकल्प अपने में शक्ति नहीं हैं—(1) प्रत्यक्ष (Concept), (2) निर्णय (Judgement) और (3) अनुमान (Inference)। काण्ट की दृष्टि से तर्कना बुद्धि (Intellect) सभी अनुभव का केन्द्र हैं। इन्होंने स्पष्ट किया कि अनुभव से संवेदना उत्पन्न होती है और संवेदना से मन की अन्त: शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं, इन शक्तियों से प्रागनुभविक ज्ञान (A Priori) जागृत होते हैं जो आनुभविक (Post Priori) संवेदनाओं को व्यवस्थित कर ज्ञान की रचना करते हैं। इस प्रकार की ज्ञान की सामग्री-प्रत्यक्ष वस्तु अथवा क्रिया (Percepts) के अनुभव से मिलती है परन्तु इन्हें व्यवस्थित करने के लिए प्रागनुभविक प्रत्यय (A Priori Concepts) की आवश्यकता होती हैं। स्पष्ट है कि ज्ञान के निर्माण में इन्द्रिय संवदेना और बुद्धि विकल्प दोनों आवश्यक होते हैं। उनकी दृष्टि से ये ही ज्ञान प्राप्ति के मुख्य स्त्रोत हैं।

प्रकृतिवादी दार्शनिक ज्ञान प्राप्ति का मूल स्त्रोत इन्द्रियों को मानते हैं। इनकी दृष्टि से इन्द्रियानुभूति ज्ञान ही मन-मस्तिष्क द्वारा ग्रहण किया जाता है और यही वास्तविक ज्ञान होता है।

प्रयोजनवादी दार्शनिक डीवी के अनुसार मनुष्य जो कुछ भी सीखता है वह सामाजिक अन्त:क्रिया के द्वारा ही सीखता है, वे क्रिया को ही ज्ञान प्राप्ति का स्त्रोत मानते थे।

वास्तविकता यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान हम सामाजिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त करते हैं और आध्यात्मिक ज्ञान हम अन्त:प्रज्ञा प्राप्त करते हैं और मन-मस्तिष्क एवं बुद्धि एवं इन सबमें समान रूप से कार्य करते हैं। वर्तमान में ज्ञान प्राप्ति के इन सभी स्त्रोतों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जाता है—

1. इन्द्रियाँ (Senses)—अनुभववादी, यथार्थवादी, प्रकृतिवादी और तार्किक प्रत्यक्षवादी दार्शनिक की दृष्टि से इन्द्रियाँ ही ज्ञान प्राप्ति का मूल स्त्रोत हैं।

2. आप्त शब्द एवं साक्ष्य (Authority and Testimony)—भारतीय आध्यात्मवादी और पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिक आप्त पुरुषों के शब्दों को ज्ञान प्राप्ति का मूल स्त्रोत मानते हैं।

3. बुद्धि एवं तर्क (Intelligence and Reason)—बुद्धि एवं तर्क को तो सभी दार्शनिकों ने ज्ञान का स्त्रोत माना है, यह बात दूसरी है कि कुछ न मूल स्त्रोत माना है और कुछ ने सहायक स्त्रोत माना है और कुछ ने सहायक स्त्रोत माना है।

4. अन्त:प्रज्ञा अथवा दिव्य प्रत्यक्ष (Intuition)—भारतीय अध्यात्मवादी दार्शनिकों ने इसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति का मूल स्त्रोत माना है।

ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ
(Methods of Gaining Knowledge)

भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने ज्ञान प्राप्त करने की भिन्न-भिन्न विधियों का विकास किया है और उसका मुख्य कारण ज्ञान के स्वरूप एवं ज्ञान प्राप्ति के स्त्रोतों के विषय में भिन्न-भिन्न मत होना है। यहाँ इस सन्दर्भ में कुछ मुख्य दर्शन एवं दार्शनिकों के विचार प्रस्तुत हैं।

भारतीय दर्शनों के अनुसार बाह्य जगत का ज्ञान इन्द्रियों द्वारा आध्यात्मिक जगत का ज्ञान अन्त:प्रज्ञा द्वारा प्राप्त होता है। उपनिषद्कारों ने किसी न किसी भी प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने के तीन पद बताए हैं—

1. श्रवण—सर्वप्रथम गुरु मुख से सम्प्रेषित ज्ञान का श्रवण करना चाहिए।

2. मनन—इस स्तर पर गुरु मुख से सम्प्रेषित ज्ञान पर चिन्तन करना चाहिए और सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिए।

3. निदिध्यासन—मनन से प्राप्त सतत् ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।

अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादक शंकर ने ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि एक ओर यह बात सत्य है कि ज्ञान, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मन को, मन के द्वारा बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा अहंकाको और चित्त के द्वारा आत्मा को प्राप्त होता है तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त तभी क्रियाशील होते हैं जब आत्मा से प्रकाशित होते हैं अर्थात् आत्मा से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। शंकर के इस मत को निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा एक दृष्टि में देखा-समझा जा सकता है—

इन्द्रियाँ ⇄ मन ⇄ बुद्धि ⇄ अहंकार ⇄ चित्त ⇄ आत्मा

और जहाँ तक ज्ञान प्राप्त करने की विधि की बात है वे उपनिषदीय विधि—श्रवण, मनन, निदिध्यासन को ही ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिक सुकरात ने ज्ञान प्राप्ति की प्रश्नोत्तर विधि का विकास किया है। उनकी प्रश्नोत्तर विधि के दो रूप हैं—एक आगमन और दूसरा समस्या-समाधान।

सुकरात के शिष्य प्लेटो ने **संवाद विधि** का विकास किया है। संवाद विधि प्रश्नोत्तर विधि का निखरा हुआ रूप है। इसमें दो व्यक्तियों के बीच संवाद चलता है, इस संवाद में प्रश्नोत्तर होते हैं और शंका समाधान होता है। इस प्रकार यह ज्ञान के खोज की विधि है।

प्लेटो के शिष्य **अरस्तु** का दृष्टिकोण आध्यात्मिक के साथ-साथ वैज्ञानिक भी था। उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने की **आगमन विधि** का विकास किया। इस विधि के तीन पद होते हैं—उदाहरण प्रस्तुत करना, निरीक्षण एवं चिन्तन करना और सामान्यीकरण करना।

प्रकृतिवादी दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त करते हैं कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने की निरीक्षण एवं **प्रयोगविधि** पर सर्वाधिक बल दिया है। इन दोनों विधियों में ज्ञान को स्वयं के अनुभव से प्राप्त किया जाता है।

प्रयोजनवादी दार्शनिक ज्ञान को एक इकाई मानते हैं और यह मानते हैं कि मनुष्य यह ज्ञान समाज की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेकर प्राप्त करते हैं। इस आधार पर डीवी ने ज्ञान प्राप्त करने की प्रयोग विधि का विकास किया जिसे सामान्यत: समस्या-समाधान विधि कहा जाता है। इस विधि के पाँच पद हैं—समस्या की अनुभूति, समस्या का विश्लेषण समस्या के समाधान हेतु उपकल्पनाओं का निर्माण, उपकल्पनाओं का परीक्षण और परीक्षण की कसौटी पर खरी उतरी उपकल्पनाओं को समस्या के समाधान के रूप में स्वीकार करना। डीवी के शिष्य **किलपैट्रिक** ने इसी आधार पर नई विधि का विकास किया जिसे प्रोजेक्ट विधि कहते हैं। इस विधि के पाँच पद होते हैं—प्रोजेक्ट का चयन, लक्ष्य निर्धारण, योजना निर्माण योजना का क्रियान्वयन और मूल्यांकन।

वर्तमान युग में ज्ञान प्राप्त करने की उपरोक्त सभी दार्शनिक विधियों को मनोवैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान किया गया है और साथ ही अनेक नई मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक विधियों का विकास किया गया है जिनमें स्वअनुदेशन का विशेष महत्त्व है।

मीमांसा दर्शन स्वत: प्रामाण्यवादी है। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान अपनी सत्यता का स्वयं ही सत्यापन करता है। दैनिक जीवन में ज्ञान यथार्थ है अथवा नहीं, इस बात की समीक्षा हम तर्क से नहीं करते वरन् उस ज्ञान के आधार पर चलकर सफलतापूर्वक क्रिया में प्रवृत्त होते हैं। जैसे—घड़े में रखे पानी को देखकर हमें उसके पानी होने में शंका नहीं होती, अपितु उसको पीकर हम अपनी प्यास बुझाते हैं। मीमांसा के स्वत: प्रामाण्यवाद में दो बाते प्रमुख हैं—

(1) ज्ञान का प्रामाण्य उस ज्ञान की उत्पादक सामग्री में ही विद्यमान रहता है—'प्रमाण' स्वत: उत्पद्यते'।

(2) जैसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है वैसे ही उसके प्रामाण्य का भी ज्ञान हो जाता है—'प्रामाण्य' स्वत: ज्ञायते च'। इस प्रकार ज्ञान निश्चयात्मक प्रमाण से ही उत्पन्न होता है और इसके बाद इस ज्ञान को जाँच की कसौटी पर बिना कसे ही हम इसकी प्रामाणिकता समझने लगते हैं। सत्य स्वयं प्रकाश होता है।

मीमांसा केवल प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही स्वत: प्रामाण्य नहीं मानता अपितु अन्य प्रमाणों द्वारा ज्ञात सत्यों को भी स्वत: प्रामाण्य कहता है। अनुमान पर्याप्त हेतु आधारित रहता है, शब्द ज्ञान विश्वस्त सूत्रों से सार्थक एवं स्पष्ट वाक्य के द्वारा होता है, अत: इसकी सत्यता की जाँच की आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह अन्य प्रमाणों से ज्ञात सच भी स्वत: सिद्ध होता है।

न्याय दर्शन ज्ञान को स्वत: प्रमाण नहीं मानता। उसके अनुसार प्रत्येक ज्ञान का प्रमाण्य उस ज्ञान की उत्पादक कारण सामग्री के अतिरिक्त बाह्य कारणों से उत्पन्न होता है। जैसे कोई प्रत्यक्ष ज्ञान प्रामाणिक है या अप्रमाणिक, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह ज्ञानेन्द्रिय जिसके आधार पर वस्तुओं का ज्ञान होता है, ठीक है या नहीं। न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्येक ज्ञान का प्रामाण्य अनुमान के द्वारा निश्चित होता है। मीमांसा दर्शन इस विचार का खण्डन करते हुये कहता है कि ऐसा मानने से अनावस्था दोष का सामना करना अनिवार्य हो जाता है। यदि 'क' के प्रामाण्य के लिए 'ख' को मानना पड़े और 'ख' के प्रामाण्य के लिए 'ग' को मानना पड़े तो इस क्रिया की समाप्ति कभी नहीं होगी। इसका परिणाम यह होगा कि किसी का प्रामाण्य सिद्ध नहीं होगा और जीवन असम्भव हो जायेगा। इस प्रकार मीमांसा न्याय के परित: प्रामाण्यवाद का खण्डन करता है। वस्तुत: वेदों को नित्य, अपौरूषेय और स्वत: प्रमाण मानने के कारण ही मीमांसा स्वत: प्रामाण्यवाद को स्वीकार करता है।

ज्ञान के स्वरूप और आत्मा के ज्ञेय स्वरूप के विषय में प्रभाकर और कुमारित् में विवाद रहा है। प्रभाकर के ज्ञानवाद को 'त्रिपुटी प्रत्यक्षवाद' कहा जाता है। प्रभाकर ज्ञान को स्वयं प्रकाश मानते हैं। इसके अनुसार यद्यपि वह स्वयं प्रकाश है फिर भी यह शाश्वत नहीं है। इसकी उत्पत्ति होती है तथा विनाश होता है। ज्ञान अपने आपको प्रकाशित करता है तथा ज्ञाता और ज्ञेय को भी प्रकाशित करता है। ज्ञान में तीन तत्त्व रहते हैं—ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय। आत्मा ज्ञाता है और वस्तुयें ज्ञेय हैं । इस प्रकार प्रत्येक ज्ञान प्रक्रिया में ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान तीनों का प्रकाशन होता है।

कुमारिल के ज्ञानावाद को 'ज्ञाततवाद' के नाम से जाना जाता है। कुमारिल प्रभाकर की तरह ज्ञान को स्वयं प्रकाश नहीं मानते। ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। ज्ञान तो ज्ञाता की क्रियामात्र है। यह न तो स्वयं प्रकाशित हो सकता है और न किसी अन्य साधन से प्रकाशित होने की इसकी क्षमता है। इसका तो केवल अनुमान किया जा सकता है। यह अनुमान ज्ञाता के आधार पर होता है। ज्ञान का अनुमान वस्तु के प्रकाशित हो जाने से हो जाता है। जैसे ही कोई वस्तु प्रकाशित होती है वैसे ही ज्ञाता के रूप में ज्ञान का अनुमान किया जाता है।

भ्रम की उत्पत्ति कैसे होती है? इस सम्बन्ध में भी मीमांसा दर्शन में दो मत हैं—एक मत प्रभाकर का और दूसरा कुमारिल का । प्रभाकर के अनुसार प्रत्येक ज्ञान सत्य होता है, यथार्थ होता है अनुभूति का अर्थ ही है यथार्थता की अनुभूति। भ्रम केवल ज्ञान का अभाव मात्र है। प्रत्यक्ष और स्मृति में अन्तर नहीं करने के कारण ही भ्रम उत्पन्न होता है। प्रभाकर के इस मत को 'अख्यातिवाद' कहा जाता है। कुमारिल प्रभाकर के इस मत से सहमत नहीं है। उनके अनुसार मिथ्या विषय भी कभी-कभी प्रत्यक्ष होने लगता है जैसे— रस्सी में सर्प की कल्पना। जैसे ही हम रस्सी में सर्प देखते हैं और कहते हैं कि यह सर्प है वैसे ही वर्तमान रस्सी सर्प की कोटि में ले आयी जाती है। कुमारिल के अनुसार भ्रम और सत्य में तार्किक अन्तर है। जब हम दो सत् किन्तु वस्तुओं मे उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं तब भ्रम उत्पन्न हो जाता है। भ्रम अख्याति नहीं है अपितु इसे विपरीत ख्याति कहा जा सकता है। कुमारिल के इस मत् को 'विपरीत ख्यातिवाद' कहा जाता है।